दलित अस्मिता के निर्माण में दलित मुक्ति आंदोलनों की भूमिका

DOI: https://doi.org/10.63345/ijrsml.v12.i3.1

डॉ. विद्या चरण
असिस्टेंट प्रोफेसर - हिंदी
राजकीय महाविद्यालय बक्खा खेड़ा, उन्नाव

यद्यपि श्रम के स्वरूप पर आधारित सामाजिक व्यवस्था विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी मिलती है, तथापि भारतीय **चातुर्वर्ण्य** समाज व्यवस्था अपनी एक विशेषता के कारण इन सबसे अलग है और शायद एकलौती भी। भारतीय समाज **में** इस चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त भी एक विशाल मानव समुदाय का अस्तित्व विद्यमान है, जिन्हें हम अन्त्यज, अछूत, दलित एवं भारतीय संविधान की शब्दावली में अनुसूचित जाति के रूप में जानते हैं।

'दलित' शब्द नया शब्द नहीं है। यद्यपि यह शब्द विगत दो-तीन दशकों में ही व्यापक प्रचलन में आया है, तथापि स्पष्ट रूप से इसका उपयोग 1930 में 'पददलित वर्गों' के हिन्दी एवं मराठी अनुवाद के रूप में किया गया था। इस शब्द का प्रथम उल्लेख हमें पुणे से 1930 में प्रकाशित 'दलित-बन्धु' में प्राप्त होता है। वर्तमान में यह आधुनिक मराठी, गुजराती, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं का एक अति प्रचलित शब्द है, जिसका सामान्य अर्थ है–उत्पीड़ित अथवा विखण्डित।

जहाँ तक 'दलित' शब्द के शब्दकोशीय अर्थ का प्रश्न है– संस्कृत हिन्दी शब्दकोश में 'दलित' शब्द के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–"दल्-क्त अर्थात् टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ और अन्य अर्थ में खुला हुआ, फैलाया हुआ।" हिन्दी शब्दकोश में दलित शब्द का अर्थ–जिसका दलन और दमन हुआ है, जो दबाया गया है, उत्पीड़ित, **शोषित**, सताया हुआ, गिराया हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि मिलता है। अंग्रेजी भाषा में दलित शब्द का समानार्थी शब्द 'डिप्रेस्ड' है, जिसका अर्थ है–दबाया हुआ, झुकाया गया, धीमा किया गया एवं नीचा दिखाया गया आदि।

भारतीय संविधान में 'दलित' शब्द का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, किन्तु जिन आधारों पर किसी मानव समुदाय अथवा जातीय-समूह को अनुसूचित जाति माना जाता है, वे सभी आधार दलित जातियों से ही सम्बन्धित हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर 'दलित' शब्द का अर्थ होगा–सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भागीदारी के स्तर पर शून्य ऐसे समुदाय, जिनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता हो।

स्पष्ट है कि जब हम 'दलित' की बात करते हैं, तो इसका तात्पर्य ऐसे समुदाय से है जिसके साथ सामाजिक स्तर पर अस्पृश्यता का व्यवहार किया गया एवं धार्मिक निर्योग्यताओं के सिद्धान्त को लागू किया गया, जिसके फलस्वरूप ये समुदाय राजनीतिक स्तर पर दमित एवं आर्थिक स्तर पर शोषित बने रहे। वर्तमान भारतीय समाज में 'दलित' शब्द का प्रयोग हिन्दू धर्म के अन्तर्गत परम्परागत रूप से अछूत मानी जाने वाली जातियों के लिए रूढ़ हो चुका है।

'दलित' हिन्दू धर्म की जाति-व्यवस्था की विशिष्ट उत्पत्ति है। जाति-व्यवस्था हिन्दू धर्म का मुख्य आधार है। जाति का केन्द्रीय आधार पद-सोपान है, जिसके अनुसार जन्म पर आधारित आनुष्ठानिक पवित्रता-अपवित्रता, उच्च और निम्न जाति श्रेणियों के आधार माने जाते हैं। इस जाति-व्यवस्था को 'कर्म का सिद्धान्त' बुनियादी शक्ति प्रदान करता है। यह व्यक्ति में इस विश्वास को उत्पन्न करता है कि उसकी निम्न या उच्च स्थिति उसके पूर्व जन्म के बुरे अथवा अच्छे कर्मों के कारण है, और वह इसके बारे में कुछ नहीं कर सकता।

साथ ही व्यक्ति अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट होकर सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह न कर दे, इसलिए आश्वस्त भी करता है कि वह वर्तमान प्रदत्त कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए आगामी जन्म में उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकता है। धर्म और कर्म की इन **जुड़वां** व्यवस्था की धारणाओं ने जाति-व्यवस्था को स्थिर और संगठित कर दिया है। धर्म-कर्म की इस जुड़वां व्यवस्था ने जो जड़ता उत्पन्न की, दलित वर्ग उससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ **क्योंकि**

वह जाति सोपान के अधोतल पर स्थित है। उसके लिए केवल अधिकारविहीन कर्तव्य हैं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक निर्योग्यताएँ हैं।

वर्तमान में भारतीय संविधान दलितों के लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द का **प्रयोग** करता है एवं इसे मान्यता प्रदान करता है। यह दलित समुदाय को भी स्वीकार्य है। वर्तमान में 'दलित' शब्द की अवधारणा और स्वरूप को प्राचीन काल के अन्त्यज और अछूत जातियों तक सीमित करने के बारे में दलित साहित्यकार एवं दलित समुदाय प्रायः एकमत हैं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि 'दलित' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के उस समुदाय के लिए होता है, जो वर्ण-व्यवस्था पर आधारित सामाजिक संरचना से बाहर अवस्थित है। वर्ण-व्यवस्था में जिसे अस्पृश्य, अन्त्यज या अछूत माना गया है एवं इसी आधार पर जिनका दलन, दमन एवं **शोषण** हुआ है। जो अपनी विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान के कारण शेष समाज के लिए घृणा का पात्र रहा है। जो जन्मना अछूत है एवं जिसे **संविधान** ने 'अनुसूचित जाति' की संज्ञा से अभिसंज्ञित किया है, वही दलित है।

दलित कोई एक जाति नहीं, अपितु ऐतिहासिक रूप से, उन अलग-अलग समूहों का समुच्चय है, जो चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था से बाहर हैं एवं इस आधार पर जिनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार होता रहा है। "एक अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग 900 दलित जातियाँ हैं।" यह एक मिश्रित जनसंख्या है, जो क्षेत्रवार अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग करती है तथा हिन्दू धर्म के साथ विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों में आस्था रखती है। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट भी इस तथ्य की पुष्टि करती है, जिसके अनुसार–"हिन्दू धर्म में 22 प्रतिशत, बौद्ध धर्म में 90 प्रतिशत, सिख धर्म में 31 प्रतिशत एवं ईसाई धर्म में 9 प्रतिशत जनसंख्या दलित है।"

देश की आजादी के बाद दलितों को धर्म, लिंग, वंश का भेद किये बिना, संवैधानिक प्रावधान के माध्यम से नागरिकता प्रदान की गयी एवं समाज में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की गयी। कल्याणकारी राज्य के माध्यम से दलितों के समुचित विकास के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की गयीं और यह अपेक्षा की गयी कि इन कार्यों से दलितों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में बदलाव होगा और नागरिक समाज में दलित-अवमानना की घटनाएँ समाप्त हो जाएँगी। लेकिन इस संबंध में पिछले छः दशक के अनुभव निराशा पैदा करने वाले ही हैं। जहाँ एक ओर नागरिकता के आधार पर दलितों को प्राप्त सामाजिक प्रतिष्ठा को नकारे जाने का कृत्य वर्तमान में भी यथार्थ है, वहीं दूसरी ओर गाँवों से लेकर नगरों तक, सरकारी कार्यालयों से लेकर मल्टीनेशनल कम्पनियों तक दलितों की अवमानना का यह क्रम कानूनी रूप से प्रतिबंधित होते हुए भी व्यवहारिक रूप में प्रचलित है।

नागरिक समाज में जहाँ वर्तमान में दलितों को दोयम दर्जे का नागरिक मानने की प्रवृत्ति मौजूद है, वहीं उसने इनकी अवमानना के लिए कूट भाषा का आविष्कार भी कर लिया है। यह सत्य है कि वर्तमान में अस्पृश्यता कम हुई है, किन्तु यह भी सत्य है कि दलित समस्याओं में वृद्धि के साथ उनकी जटिलता में भी वृद्धि हुई है। आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, शहरीकरण, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण–सभी नवीन और 'अर्थ' से परिचालित होने वाली प्रक्रियाएँ हैं। विकास-योजनाओं के 6 दशक बाद भी वर्तमान में दलित इन आर्थिक-प्रक्रियाओं में प्रतिभाग करने में असमर्थ हैं।

मध्यवर्ग, जो इन आर्थिक प्रक्रियाओं के केन्द्र में है, वह 2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार दलितों में महज 1.77 प्रतिशत (कुल 4,42,26,917 दलित परिवारों का) ही है। दलित-संघर्ष जिन दलित-प्रश्नों को लेकर आरम्भ हुआ था, वे सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से संबंधित थे। स्पष्ट है कि जहाँ सामाजिक समस्याओं को कुछ हद तक सुलझाने में दलित सफल हुए हैं, वहीं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में वे लगातार पिछड़ते गये हैं।

2011 की जनगणना रिपोर्ट इस तथ्य की पुष्टि करती है, जिसके अनुसार–"वर्तमान में देश में 20 करोड़ से अधिक दलित निवास करते हैं, जो कुल जनसंख्या का 16.6 प्रतिशत हैं। दलित जनसंख्या का एक तिहाई से ज्यादा हिस्सा (76.40 प्रतिशत) गाँवों में निवास करता है और खेतिहर मजदूर एवं मजदूरी के अन्य कार्यों में संलग्न है। देश के कुल 4,42,26,917 दलित परिवारों में से वर्तमान में अधिकांश आवास, भोजन, शुद्ध-पेयजल, बिजली, शौचालय जैसे मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं। 16.92 प्रतिशत दलित परिवारों (LPG का उपभोगकर्ता) को छोड़कर 78.96 प्रतिशत दलित परिवार आज भी भोजन बनाने हेतु जलाऊ लकड़ी, फसलों के अवशेष एवं उपलों पर निर्भर हैं।

जहाँ 66 प्रतिशत दलित घरों में आज भी शौचालय नहीं हैं, वहीं 59 प्रतिशत दलित घर बिजली की रोशनी से महरूम हैं। एक बेहतर जीवन स्तर हेतु मनोरंजन, संचार एवं आवागमन के साधनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की जाती है। दलित संदर्भ में यदि इन साधनों का विश्लेषण करें तो टेलीविजन–39.15 प्रतिशत, कम्प्यूटर–5.22 प्रतिशत, मोबाइल/लैण्डलाइन–2.56 प्रतिशत, एवं साइकिल/मोटरसाइकिल–23.06 प्रतिशत दलित परिवारों को ही उपलब्ध हैं। ऐसे दलित परिवार जिनके पास टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, साइकिल, मोटरसाइकिल आदि कुछ भी नहीं है, उनका प्रतिशत 22.60 है।"

जनगणना के इन नवीनतम आँकड़ों से स्पष्ट है कि दलितों की आर्थिक समस्याएँ जटिल से जटिलतर होती जा रही हैं, जबकि अभी यह अपनी सामाजिक समस्याओं को ही ठीक से सुलझा नहीं पाया है। जनगणना के ये आँकड़े न सिर्फ वर्तमान दलित यथार्थ को व्यक्त कर रहे हैं, अपितु दलित समस्याओं की भयावहता की ओर संकेत भी कर रहे हैं।

यदि हम पिछली जनगणना (2001) के आँकड़ों के आधार पर दलितों की सामाजिक स्थिति और संसाधनों में उनकी भागीदारी की बात करें, तो उस समय गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली कुल 48 प्रतिशत जनता के मुकाबले दलित आबादी की 70 प्रतिशत अतिदरिद्रता की हालत में थी। देश की कुल जनसंख्या का 16 प्रतिशत होने के बावजूद दलितों के पास खेती योग्य जमीन का केवल एक प्रतिशत हिस्सा ही था।

जनगणना 2011 के आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि दलितों की स्थिति में कमोवेश विशेष परिवर्तन नहीं आया है, अपितु परिस्थितियाँ अधिक जटिल ही हुई हैं। कानूनन पाबंदी के बाद आज भी देश के अधिकतर हिस्सों में छुआछूत जारी है। नयी सदी में जाने से ठीक पहले संसद में सरकार ने समाज कल्याण मंत्री मेनका गांधी के माध्यम से यह स्वीकार किया था कि–"आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पांडिचेरी में अस्पृश्यता का प्रचलन है। इन बारह प्रदेशों के अलावा जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, गोआ, दिल्ली और अन्य केन्द्रशासित राज्यों में इस कुप्रथा का असर अभी कुछ हल्का ही हो पाया है।"

दलितों पर हो रहे अत्याचारों के संबंध में ह्यूमन स्कोप की यह रिपोर्ट महत्वपूर्ण है, जिसके अनुसार–"देश में हर एक घण्टे में दो दलितों को हिंसक हमले का शिकार होना पड़ता है, प्रत्येक दिन तीन दलित औरतों के साथ बलात्कार होता है, प्रत्येक दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है और दो दलितों के घरों में आग लगा दी जाती है।"

दलितों को अपनी समस्याओं से मुक्ति कब मिलेगी? मुक्ति का वह रास्ता कौन-सा होगा? जैसे प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं।

ऐसा नहीं है कि दलितों ने इस स्थिति को सहर्ष स्वीकार किया हो अथवा इस व्यवस्था को बदलने के लिए कोई संघर्ष न किया हो। समतामूलक समाज के अनेक स्वप्नद्रष्टाओं ने अपने-अपने समय में, विविध आंदोलनों एवं संगठनों के माध्यम से दलितों की समस्याओं को न केवल गम्भीरता से उठाया, अपितु अपनी सीमाओं में निराकरण के प्रयास भी किये। इसी का परिणाम है कि आज दलित समुदाय में अपनी पहचान, सत्ता एवं संसाधनों में भागीदारी एवं हिस्सेदारी के संबंध में जागरूकता बढ़ रही है, जो कि समतामूलक समाज की स्थापना के संबंध में एक शुभ संकेत है।

ज्ञात स्रोतों में गौतम बुद्ध और महावीर वे पहले ऐतिहासिक व्यक्ति थे जिन्होंने चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को नकारा। इन्होंने बौद्ध एवं जैन धर्म के माध्यम से असमानता पर आधारित वर्ण-व्यवस्था एवं इसके कारण जन्मी अस्पृश्यता का विरोध किया एवं अपने धर्म का मार्ग सभी के साथ अछूतों के लिए भी खोल दिया। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के रूप में जो पहला सुधारवादी आंदोलन चला, उस पर कहीं न कहीं बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव था। भक्ति आंदोलन से पूर्व यह समुदाय धार्मिक कार्यों के लिए प्रायः अयोग्य ही था। कबीर, नानक, रैदास जैसे अनेक संतों ने इस वंचित समुदाय में आशा और प्रेरणा का संचार किया और उनके भीतर आत्मविश्वास उत्पन्न किया कि ईश्वर सबका है। इन संतों ने ईश्वर के नाम पर जारी सामाजिक भेदभाव, धार्मिक कुरीतियों एवं कर्मकाण्डों का प्रभावशाली विरोध किया।

19वीं सदी में दलितों के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में हो रहे भेदभाव, छुआछूत, शोषण और अत्याचार से मुक्ति दिलाने तथा इन क्षेत्रों में उनकी समुचित भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर अनेक सामाजिक-

राजनीतिक आंदोलन हुए। एक मनुष्य के रूप में दलितों की मानवीय गरिमा की स्थापना इन आंदोलनों के केन्द्र में थी। स्थूल तौर पर इन आंदोलनों को सुधारवादी एवं वैकल्पिक दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

सुधारवादी आंदोलन मुख्यतः समाज की चातुर्वर्णीय व्यवस्था को बनाये रखते हुए उसमें सुधार की भावना से प्रेरित थे। इन आंदोलनों में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज, महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज, दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन, गोपाल कृष्ण गोखले ने दि सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी, मैडम एच.पी. ब्लावात्स्की एवं कर्नल एच.एस. ओल्कॉट ने थियोसोफिकल सोसाइटी के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया। यदि इन सुधारवादी आंदोलनों की समीक्षा की जाये और इसकी सीमाओं पर विचार किया जाये, तो बहुसंख्यक जनता को अपने सिद्धान्तों एवं विचारों को समझा न पाना इनकी सबसे बड़ी कमी थी। इसके अतिरिक्त दलितों की समस्याओं के निराकरण में गंभीरता का अभाव भी था। ये सुधारवादी आंदोलन समस्या के मूल कारणों (चातुर्वर्ण्य व्यवस्था) को समझते हुए भी उसे दूर करने के प्रति उदासीन बने रहे। इसका कुल परिणाम यह हुआ कि ये आंदोलन समाज में अपना दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ने और समाज में सारगर्भित परिवर्तन लाने में असफल रहे। फिर भी इन आंदोलनों की यह उपलब्धि रही कि इन्होंने समाज में एक सुधार का वातावरण निर्मित किया, जिससे दलितों को अपनी समस्याओं के निराकरण में कुछ मदद अवश्य मिली।

इन सुधारवादी आंदोलनों के समानान्तर एक वैकल्पिक आंदोलन भी समाज में चल रहा था, जिसका दृढ़ विश्वास था कि दलितों की समस्याओं का वास्तविक निराकरण तब तक संभव नहीं है जब तक कि समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का अस्तित्व है। इस सामाजिक व्यवस्था के विरोध में विकल्पों की खोज के कारण ही ये आंदोलन वैकल्पिक आंदोलन की संज्ञा से अभिसंज्ञित हैं।

इन आंदोलनों में प्रमुखतः ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज, श्रीनारायण गुरु स्वामी ने श्रीनारायण धर्म परिपालन आंदोलन, पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर ने सेल्फ-रेस्पेक्ट मूवमेंट, अच्युत आनन्द ने आदि धर्म आंदोलन, गुरु घासीदास ने सतनामी आंदोलन, गोपाल बुवा कृष्णा वलंगकर ने अनार्य दोष परिहार मंडली, तथा स्वामी अछूतानन्द ने आदि हिन्दू आंदोलन के माध्यम से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विकल्प प्रस्तुत किया।

इन वैकल्पिक आंदोलनों में महात्मा ज्योतिबा फुले का आंदोलन सबसे प्रखर था। इन्होंने सत्यशोधक समाज के माध्यम से दलितों के साथ हो रहे छुआछूत, भेदभाव, शोषण और अत्याचार के खिलाफ आक्रामक आंदोलन छेड़ा। महात्मा फुले का यह आंदोलन एक और संदर्भ में महत्वपूर्ण था कि वे दलितों को स्पर्श्य शूद्रों से जोड़ने के अभियान के प्रथम सूत्रधार थे। इन्होंने इसे सम्मिलित रूप से 'बहुजन समाज' कहा।

महात्मा फुले जीवन में शिक्षा के महत्व से भलीभाँति परिचित थे। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गुलामगीरी' में दलितों की दुर्दशा का मुख्य कारण उनकी अज्ञानता को माना। उनके विचार थे कि अशिक्षा और अज्ञानता के कारण दलितों में जागरूकता का अभाव है, जिसके कारण वे अपने साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार और अमानवीय सामाजिक व्यवस्था का विरोध नहीं कर पा रहे हैं। यही कारण है कि अछूतों और शूद्रों को शिक्षित करने की पहली उल्लेखनीय मुहिम उन्होंने ही चलायी।

प्रतीकात्मक तौर पर यह माना जाता है कि यदि फुले न होते तो अम्बेडकर भी न होते, क्योंकि महारों के लिए पहली पाठशाला उन्होंने ही खोली थी। संभवतः फुले की इसी महत्ता के कारण अम्बेडकर ने अपने तीन गुरुओं में बुद्ध और कबीर के बाद फुले को स्थान दिया। अपनी पुस्तक *Who Were the Shudras?* को फुले को समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है कि–

"आधुनिक भारत के महानतम शूद्र, जिन्होंने हिन्दुओं के निचले वर्गों को ऊँचे वर्गों की दासता के प्रति सचेत किया और जिन्होंने शुभोपदेश दिया कि भारत के लिए विदेशी शासन से मुक्ति की अपेक्षा सामाजिक लोकतंत्र कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"

फूले ने जात-पाँत एवं स्त्रियों की स्थिति के विरुद्ध कड़ा संघर्ष शुरू कर दिया। अछूतों के लिए कुओं और तालाबों से पानी भरने पर लगे प्रतिबंधों को उन्होंने खुद ही पानी भरकर तोड़ा और उन्हें हिम्मत और साहस दिया। बाल-विवाह, सती प्रथा, कन्या-हत्या आदि के विरोध में फूले ने अनेक आन्दोलन चलाये और उन्हें दूर करने की कोशिश की। इसके बाद किसानों के लिए संघर्ष, मजदूरों के हित की रक्षा और दलित-पिछड़े

समाज के लिए आडम्बर रहित वैकल्पिक धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था उनके आंदोलन के कई चरण हैं। उन्होंने अपने मिशन के लिए 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की और अनेक पुस्तकें लिखकर तथा अखबार निकालकर अपने मतों का प्रचार किया। ज्योतिबा ने पूरी ईमानदारी और निष्ठा से स्त्री और दलितों की लड़ाई लड़ी, उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गुलामी से मुक्त कराने का प्रयास किया और बहुत हद तक उसमें सफलता भी पायी।

दलित उत्थान के प्रयास में नारायण गुरु का नाम अग्रणी है। उन्हें केरल के नवजागरण का पैगम्बर कहा जाता है। अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने उनके सामाजिक कार्य और आध्यात्मिक महिमा का गुणगान किया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था कि "विश्व-भ्रमण के दौरान मेरी मुलाकात अनेक ऋषि-महर्षियों से हुई, पर मुझे एक भी ऐसा आध्यात्मिक पुरुष नहीं मिला, जो नारायण गुरु से बड़ा तो क्या बराबर भी हो।" रोमां रोलां ने उन्हें एक महान धार्मिक बुद्धिवादी संत निरूपित करते हुए लिखा है कि दक्षिण भारत के दलितों के उत्थान के लिए उन्होंने बहुत काम किया है।

नारायण गुरु एक ही साथ कवि, साहित्यकार, पत्रकार, विद्वान, भक्त, दार्शनिक, संत और समाजसुधारक थे। वे बहुभाषाविद् थे। उन्होंने एक ही साथ तमिल, मलयालम और संस्कृत तीन-तीन भाषाओं में रचनाएँ की हैं। उनका संदेश था–"मनुष्य का एक ही भगवान है, एक ही धर्म है और एक ही जाति है।" आधुनिक युग के इस क्रान्ति-पुरुष नारायण गुरु का जन्म 20 अगस्त सन् 1854 को केरल के त्रिवेन्द्रम नगर से 12 किलोमीटर दूर चेम्बाझन्थी (चम्दन्ती) नामक कस्बे में एक दलित परिवार में हुआ था।

नारायण गुरु ने जिन दलित जातियों के उद्धार के लिए आन्दोलन चलाया, उन्हें संयुक्त रूप से 'इझवा' कहा जाता है। इझवा, थिया, चोवन, थंडन आदि शूद्र और अछूत जातियों का एक समूह था। केरल में सबसे बुरी स्थिति इन्हीं जातियों की थी। वहाँ अस्पृश्यता और अगम्यता का ऐसा रूप प्रचलित था, जो किसी भी समाज के लिए घृणित और अमानवीय कहा जा सकता है। छुआछूत की ऐसी स्थिति थी कि सामाजिक स्तर और जाति-भेद के अनुसार लोगों को नम्बूदरी ब्राह्मणों से दूरी बनाये रखना पड़ता था। इसे अगम्यता कहते थे और जिन जातियों से दूरी बनायी जाती थी, उन्हें अगम्य जाति कहते थे।

नायर केरल में अछूत जाति नहीं है। यह अपेक्षाकृत अधिक शिष्ट और श्रेष्ठ जाति है। इन्हें सवर्णों की श्रेणी में रखा जा सकता है, किन्तु "नम्बूदरी ब्राह्मण नायर जैसे सवर्णों से भी 32 फुट दूरी बनाये रखते थे। अर्थात उन्हें 32 फुट दूर रहकर ही ब्राह्मणों से बातचीत या व्यवहार करना पड़ता था। इससे कम दूरी पर खड़े होने पर ब्राह्मणों को छूत लग जाती थी। इसी प्रकार इझवा जैसी जातियों से उनकी अस्पृश्यता की दूरी 64 फुट थी और पुलाया, परेया आदि अछूतों से तो यह दूरी 100 फुट निर्धारित थी। आश्चर्य तो यह भी था कि ये जातियाँ भी आपस में दूरियाँ रखती थीं। श्रेष्ठता क्रम में ये दूरियाँ वहाँ भी निर्धारित थीं।"

नम्बूदरी ब्राह्मणों में एक और विचित्र परम्परा प्रचलित थी कि वे छूत तो अपने से नीच सभी जातियों से रखते थे, किन्तु यौन संबंध में वे स्वतंत्र थे। अर्थात अन्य जातियों की प्रायः सभी स्त्रियों से वे यौन सम्बन्ध रख सकते थे। उनमें यह प्रथा प्रचलित थी कि परिवार में केवल बड़े लड़के की ही शादी होती थी। अन्य लड़कों का अल्पकालिक विवाह होता था, वह भी अपनी जाति में नहीं, नायर जाति की लड़कियों से। एक के बाद एक वे अन्य अनेक लड़कियों से शादी करते थे, किन्तु उनसे उत्पन्न संतान माता की ही संतान होती थीं। नम्बूदरी पिता उनका स्पर्श तक नहीं कर सकते थे।

अन्य जातियाँ अपनी कुँवारी लड़कियों का कौमार्य भंग प्रायः नम्बूदरी ब्राह्मणों से ही करवाती थीं। यह एक प्राचीन परम्परा थी। इसके विपरीत खुद ब्राह्मणों की कुँवारी लड़कियों में, जो कि अधिकतर या तो कुँवारी रह जाती थीं या एक ही पति की अनेक पत्नियों में शामिल हो जाती थीं, अनैतिक यौन-सम्बन्धों की भरमार थी। इससे समाज में बहुविवाह और एक अराजक यौन अनैतिकता का प्रचलन हो गया था।

"समाज की इन्हीं कुरीतियों को देखकर विवेकानन्द ने केरल को एक विशाल पागलखाना कहा था।"

नारायण गुरु ने सर्वप्रथम इन्हीं प्रथाओं पर कुठाराघात किया। उन्होंने पुरातन प्रथा नम्बूदरियों के नकली विवाह, स्त्रियों के यौवनारम्भ उत्सव, प्रथम गर्भधारण के 9वें महीने में आयोजित होने वाले उत्सव 'पुलिकुटी' और जीव बलि (पुलाकुलि) को बन्द करवा दिया। उन्हें इसके लिए जनमत संग्रह करवाने पड़े। समाज का कड़ा सामाजिक प्रतिरोध झेलना पड़ा। उन्होंने मद्यपान के विरोध में भी आन्दोलन किया और शराब को

जहर बताया। उन्होंने अपने जन्मदिन को 'मद्य निषेध दिवस' के रूप में घोषित किया और 1921 में अपने जन्मदिन से ही शराबबन्दी के लिए आन्दोलन चलाया। नारायण गुरु ने ही 1924 ई. में केरल में 'अलवये' नामक स्थान में देश का पहला 'सर्वधर्म सम्मेलन' करवाया था, जिसमें बड़ी संख्या में जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई और पारसी धर्मों के आचार्य और विद्वानों ने भाग लिया था। नारायण गुरु के नवजागरण का प्रभाव केरल के मन्दिरों में स्पष्ट रूप से लक्षित है। वहाँ के मन्दिरों में सभी पुजारी अब्राह्मण थे, जिन्हें 9 वर्षों तक कठिन प्रशिक्षण लेना पड़ता था। यह नारायण गुरु का ही प्रभाव था। यह परम्परा वहाँ आज भी प्रचलित है।

यद्यपि समाज-सुधार के सुधारवादी और वैकल्पिक आंदोलन दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। संभवतः इसका एक मुख्य कारण यह है कि जहाँ सुधारवादी आंदोलनों का नेतृत्व अधिकांशतः उच्च वर्ग ने किया, जिसे इस वर्ण-व्यवस्था में विशेषाधिकार प्राप्त थे और ये हिन्दू धर्म की परम्पराओं और संस्कारों से अभी पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो पाये थे। वहीं वैकल्पिक आंदोलन के नेतृत्वकर्ता अधिकांशतः शूद्र और दलित थे, जिन्होंने इस व्यवस्था के कारण सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक-आर्थिक क्षेत्रों में हो रहे भेदभावों, छुआछूत, शोषण और अत्याचार को स्वयं झेला था। किन्तु सम्मिलित रूप से इन आंदोलनों ने सुधार के दृष्टिकोण को समग्रता प्रदान की। इन आंदोलनों ने जहाँ इस तथ्य की स्थापना की कि हजारों वर्षों से प्रचलित सामाजिक-व्यवस्था, जिसकी जनता अभ्यस्त है, उसे एकाएक बदलना संभव नहीं है; वहीं इस तथ्य को भी स्थापित किया कि इस व्यवस्था को समाप्त किये बिना दलितों की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन लाना भी संभव नहीं है। इन आंदोलनों से यह भी स्पष्ट हो गया कि अब दलितों को अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ नये रास्तों की भी तलाश करनी होगी।

20वीं शताब्दी में डॉ. अम्बेडकर और महात्मा गांधी वे दो महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, जिन्होंने अस्पृश्यता को भारतीय समाज और राजनीति में महत्वपूर्ण प्रश्न बनाया। यद्यपि इसके पूर्व 18वीं व 19वीं शताब्दी में अनेक संतों, समाज-सुधारकों एवं आंदोलनों ने दलित से संबंधित समस्याओं को उठाया था। किन्तु स्पष्ट है कि भारतीय समाज में दलितों के संबंध में सार्थक बदलाव डॉ. अम्बेडकर और महात्मा गांधी के हस्तक्षेप के बाद ही प्रारम्भ होता है। दलित-प्रश्न जहाँ डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन के केन्द्र में था, वहीं यह महात्मा गांधी की केन्द्रीय चिंताओं में से एक था। दोनों ही व्यक्तियों की यह आकांक्षा थी कि दलितों से संबंधित सभी समस्याओं का निवारण होना चाहिए, लेकिन यह किस प्रकार होगा, इस संबंध में दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता थी।

अस्पृश्यता के प्रति गांधीवादी दृष्टिकोण मूलतः धार्मिक और आध्यात्मिक था और इसे वे हिन्दू परिवार की आन्तरिक समस्या मानते थे। उनका मानना था कि अस्पृश्यता का विचार एवं व्यवहार सम्पूर्ण हिन्दू समाज में व्याप्त है, जिसमें एक जाति दूसरी जाति के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करती है। दलितों के साथ केवल अस्पृश्यता की मात्रा का ही अंतर है। गांधी जी इस समस्या का निवारण संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से द्विज जातियों में छुआछूत के प्रति पापबोध उत्पन्न करके आत्मशुद्धि के द्वारा करना चाहते थे। वे अस्पृश्यता-उन्मूलन आंदोलन को आत्मशुद्धि की एक पवित्र रस्म के रूप में देखते थे। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा कि– "अस्पृश्यता निवारण का आंदोलन आत्मशुद्धि का आंदोलन है।"

गांधी के विचारों के विपरीत डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि–"अछूत, जाति-प्रथा का ही उपउत्पाद है।"

"अछूत रहेंगे क्योंकि जातियाँ बरकरार हैं। जाति-प्रथा के विनाश के सिवाय अछूतों के उद्धार का कोई और रास्ता नहीं है।" डॉ. अम्बेडकर अस्पृश्यता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की संरचना में दलितों के लिए स्वतंत्र राजनीतिक पहचान बनाने के संदर्भ में परिभाषित करते थे। डॉ. अम्बेडकर दलित-प्रश्न को नागरिक प्रश्न मानते थे। गांधी द्वारा आत्मशुद्धि के आग्रह के स्थान पर डॉ. अम्बेडकर आत्मसम्मान के साथ दलित-समस्याओं का निवारण आधुनिक लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से चाहते थे। उनका यह स्पष्ट मानना था कि, "परिवर्तन सामाजिक संरचना में होना चाहिए। समाज में अछूतों का जो स्थान है, उसकी श्रेणी या दर्जे में अन्तर आना चाहिए।"

वर्तमान में दलित-समस्याओं के निराकरण के प्रयास के रूप में जब हम गांधीवादी और अम्बेडकरवादी दृष्टिकोण की समीक्षा करते हैं तो डॉ. अम्बेडकर के दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण पाते हैं। दलित-प्रश्न को लेकर गांधी का दृष्टिकोण यद्यपि मानवतावादी था, फिर भी वह इस समस्या की भयावहता को स्वीकार नहीं करते थे। देश की स्वतंत्रता गांधी जी की चिन्ता

के केन्द्र में थी। गांधी जी के अनुसार दलित-समस्या हिन्दू समाज की एक आन्तरिक समस्या थी। वे इसे बाद में सुलझा लेने वाला प्रश्न मानते थे।

इस संबंध में अभय कुमार दुबे के विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जिसके अनुसार– "राष्ट्रीय आंदोलन एक आधुनिक गतिविधि होते हुए भी दलित प्रश्न को या तो बाद में निबटाये जा सकने वाले पचड़े के रूप में देखता था या फिर आधुनिक विचार-श्रेणियों और राजनीति का इस्तेमाल करने के बजाय इस मसले को परंपरा के औजारों से हल करने के पक्ष में था। पहली प्रवृत्ति की नुमाइंदगी अगर नेहरू और उनके वामपंथी साथियों के हाथ में थी तो दूसरी प्रवृत्ति के सबसे बड़े प्रवक्ता स्वयं गांधी थे।"

गांधी के विपरीत दलित-समस्याओं के प्रति डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी और व्यावहारिक था। समस्या के मूल कारणों के प्रति उनकी समझ स्पष्ट थी और वे इसमें बुनियादी बदलाव लाने हेतु प्रतिबद्ध थे।

डॉ. अम्बेडकर की यह प्रतिबद्धता उनके द्वारा चलाये गये विभिन्न आंदोलनों–जिनमें महाड़ सत्याग्रह (1927), मंदिर प्रवेश आन्दोलन (1929-30), लेबर पार्टी की स्थापना (1936), नागपुर सम्मेलन (1942), तथा धर्म परिवर्तन आन्दोलन (1956) प्रमुख थे–में परिलक्षित होती है। डॉ. अम्बेडकर के लिए इन आंदोलनों का विशेष महत्व दलितों के नागरिक अधिकारों की स्वीकृति एवं प्राप्ति के संबंध में था।

दलित-हितों की रक्षा अथवा दलित-समस्याओं के निवारण का जब भी कोई अवसर डॉ. अम्बेडकर को मिला, उन्होंने उसका सर्वोत्तम उपयोग किया। चाहे वह साइमन कमीशन (1928) को दलितों की तत्कालीन स्थिति से अवगत कराना हो, गोलमेज सम्मेलनों (1930-31) में प्रभावी ढंग से दलित-हितों का प्रतिनिधित्व करना हो, या फिर संविधान की प्रारूप-समिति के अध्यक्ष और कानून मंत्री के रूप में दलित-हितों की सुरक्षा और भागीदारी सुनिश्चित करने का कार्य हो–डॉ. अम्बेडकर ने इन प्रत्येक अवसरों का उपयोग दलितों के जीवन में सारगर्भित एवं गुणात्मक परिवर्तन लाने में किया।

इन अर्थों में डॉ. अम्बेडकर 20वीं सदी में दलित हितों के वास्तविक प्रतिनिधि थे। सारांशतः कहा जा सकता है कि दलित मुक्ति के आंदोलनों, विशेषकर वैकल्पिक आंदोलनों ने जहाँ दलित-अस्मिता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, वहीं वर्तमान सदी में दलित-समस्याओं के प्रति डॉ. अम्बेडकर का यथार्थवादी और वैज्ञानिक चिंतन दलित-विमर्श के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

आजादी के 66 वर्ष व्यतीत होने के बाद आज भी भारत की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में विषमता और अन्तर्विरोध बने हुए हैं। भारतीय समाज को यह अनुभव एवं स्वीकार करने में लगभग आधी सदी लगी कि हमसे कुछ गलतियाँ हुई हैं, जिसके कारण हमारा समाज असन्तुलित हो गया। संवैधानिक वायदे के बाद भी हम समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय के लक्ष्य से अभी दूर हैं। असमानता को जन्म देने वाली चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था का आज भी समाज में अस्तित्व है। यह व्यवस्था कमजोर होने के स्थान पर अपने परिवर्तित स्वरूप में क्रमशः मजबूत हो रही है।

आज भी देश में एक बड़ी आबादी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक स्तर पर विषमता से पीड़ित है। यह आबादी अपनी समस्याओं से मुक्ति के लिए, अपनी अस्मिता के लिए, अपनी वास्तविक आजादी के लिए आज भी संघर्षरत है। उदारीकरण के दौर में देश का काफी विकास हुआ, लेकिन यह विचार करना पड़ता है कि आखिर किसका विकास हुआ? क्या यह विकास समावेशी है?

हाशिये पर स्थित, आधुनिक विकास के फल से वंचित ये समूह इस विकास पर प्रश्नचिह्न लगाता है। आधुनिक आवागमन एवं संचार के साधनों ने जहाँ दुनिया की दूरियाँ मिटाकर उसे विश्व-ग्राम में बदल दिया है, वहीं आज भी भारत की उच्च जातियों एवं दलितों के बीच एक लंबा फासला दिखाई देता है। दलितों का वर्तमान यथार्थ उन्हें अपने भविष्य के लिए एक लम्बे और जटिल संघर्ष के लिए प्रेरित कर रहा है। समतामूलक समाज के निर्माण का लक्ष्य दलितों के लिए अभी भी शेष है।

संदर्भ :-

- दलित कौन है? : जॉन सी.बी. वेबस्टर
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था : राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
- संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश : वामन शिवराम आप्टे, 2007
- दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : ओम प्रकाश वाल्मीकि
- युद्धरत आम आदमी : कंवल भारती, अंक 41-42, 1998

- साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल : मोहनदास नैमिशराय, नया पथ, अंक 24-25
- दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ : डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर
- आधुनिकता के आइने में दलित : सं. अभय कुमार दुबे
- दलित के मानवाधिकार : दलित सुरक्षा एवं अधिकारों का कार्यान्वयन : प्रेम के. शिंदे
- रूलिंग एलिट : अनटचेबिलिटी एंड इंडियाज : सुभाष गाताडे, 2001
- ह्यूमन स्केप : सितम्बर, 2001
- शूद्रों की खोज : डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, अनु. मोजेज माइकेल
- भारत के सामाजिक क्रांतिकारी : देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी हरिजन, खण्ड-1
- अम्बेडकर : अस्पृश्यता - स्वरूप और संदर्भ : भारतीय सामाजिक विचारक : एस. एल. दोषी
- Census 2011 - Government of India
- Minority Report - Government of India, Rajinder Sachar, 2006

ISSN: 2321-2853
ESTD.2013
IJRSML